IMPACT FACTOR 7.50 (SJIAI)

बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM

Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 4, Issue 2, April-june, 2026
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
https://doi.org/10.5281/zenodo.20568050

ISSN : 3048-6971

प्राचीन भारत में प्रस्तर अभिलेखों की लेखन तथा उत्कीर्णन परम्परा : एक संक्षिप्त अध्ययन

दिवाकर मिश्र

शोध सार

प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के महत्वपूर्ण तथा प्रमाणिक स्रोतों में अभिलेखों की गणना की जाती है। अभिलेखों के स्थायित्व की दृष्टि से प्रारंभिक युग से ही प्रस्तर का सबसे लोकप्रिय लेखन उपादान रहा है। मौर्य सम्राट अशोक ने सर्वप्रथम व्यापक रूप से शिला, स्तम्भों पर धर्म प्रचार हेतु लेख उत्कीर्ण करवाए, किन्तु नवीन पुरातात्विक प्रमाणों से इसकी प्राचीनता सैन्धव–सरस्वती सभ्यता तक सिद्ध होती है। प्रस्तर लेखों में प्रायः राजाज्ञा, प्रशस्ति, दान, साहित्यिक रचनाएं आदि विषय उत्कीर्ण किए जाते थे। प्राचीन काल में लेखन की विविध तकनीकों में खुरचना, स्याही से चित्रण, उत्कीर्णन आदि प्रमुख थे, जिनके प्रमाण भारत में यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं। अभिलेखन प्रक्रिया यह मुख्य रूप से तीन चरणों– रचना, लेखन, उत्कीर्णन में पूर्ण होती थी। इस कार्य में रचनाकार या प्रारूपकर्ता, लेखक या प्रतिलिपिकार तथा उत्कीर्णकों का वर्ग संलग्न रहता था, जिनका उल्लेख अभिलेखों की अन्तिम पंक्तियों में देखा जा सकता है। मौर्यकाल से प्रारम्भ प्रस्तर अभिलेखों की यह परम्परा गुप्तकाल तक अनवरत रूप से दिखलाई पड़ती है। पूर्वमध्यकाल में भारतीय शासकों द्वारा अत्यधिक संख्या में ताम्रपत्रों के जारी किए जाने तथा अन्ततः मुसलमानों के आगमन से भारत में कागज के प्रचलन से प्रस्तर उत्कीर्णन परम्परा का क्रमिक ह्रास हुआ। प्रस्तुत शोध–पत्र प्राचीन भारतीय अभिलेखीय परम्परा में प्रस्तर की भूमिका व तकनीकी विकास को रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द– लेखन परम्परा, प्रस्तर अभिलेख, उत्कीर्णन तकनीक, शिलालेख, अशोक, सैन्धव सभ्यता, शलाका प्रविधि लेखक, उत्कीर्णक।

शोध–पत्र

प्रारम्भिक युग से ही उत्कीर्ण–लेखन के लिए तथा उसे चिरस्थायी या शाश्वत बनाने की दृष्टि से प्रस्तर का उपयोग होता था।[1] अभिलेखों के लिए प्रयुक्त सबसे प्राचीन, सर्वसुलभ व लोकप्रिय आधार प्रस्तर ही था, जिसका प्रयोग इसके स्थायित्व गुण के कारण व्यापक रुप से किया गया। साथ ही यह सम्पूर्ण भारत में आसानी से उपलब्ध उत्कीर्णन आधार भी था, जिसका प्रमाण भारतवर्ष में फैले बहुसंख्यक अभिलेख हैं। लेखन हेतु प्रायः प्राचीन काल में कोमल चट्टान जैसे बेसाल्ट, बलुआ प्रस्तर आदि का प्रयोग होता था जबकि, कठोर प्रस्तर का प्रयोग यदा–कदा देखा जा सकता है।[2]

प्रस्तर जैसे लेखन उपादान का प्रयोग सामान्यतः राजाज्ञा, प्रशस्तियाँ, राजाओं के मध्य संधियाँ, समझौते, दान, स्मृतियाँ, समर्पण, भूमिदान, काव्य–स्राव, साहित्यिक कृतियाँ तथा वृहद् धार्मिक ग्रन्थ आदि विविध प्रकार के लेखों को उत्कीर्ण करने के लिए किया जाता था।[3] इन लेखों को सामान्यतः 'शिलालेख' 'स्तम्भलेख' 'गुहालेख' व 'मूर्तिलेख' आदि की संज्ञा दी जाती है, जबकि अभिलेखों में इनके शिलापट्ट[4], सिलाफलकानि[5] (शिलाफलक), सिलाथम्भानि,[6] सालाठभ,[7] सिलाठंभ[8] (प्रस्तर स्तम्भ), छाया–थबो,[9] छाय–खंभो[10] (मूर्तियुक्त स्तम्भ), कुभा[11] (गुहा) आदि विविध नाम मिलते हैं। नामों की इस विविधता का कारण यह था कि अभिलेखों को उत्कीर्ण करने से पूर्व प्रस्तर या शिला को उत्कीर्णकों द्वारा निर्देशानुसार विशेष आकार–प्रकार दे दिया जाता था और इसी आधार पर उनका नामकरण कर दिया जाता था।

राजबली पाण्डेय[12] ने अभिलेखों के लिए प्रयोग किये गये प्रस्तर के प्रकारों में खुरदरे या चिकने शिलाखण्ड, स्तम्भ, शिला–फलक, मूर्तियों के आसन व पृष्ठभाग, प्रस्तर पात्र और उनके ढक्कन, मन्दिर की दीवार, फर्श व स्तम्भ तथा गुहाओं की गणना की है। इनके अतिरिक्त भारत के विभिन्न भागों से प्रस्तर की

अभिलिखित मुहरें व साँचें भी प्राप्त हुए हैं। इनमें सबसे प्राचीन हड़प्पा से प्राप्त प्रस्तर की एक मुहर का उल्लेख किया जा सकता है, जिस पर बैल की आकृति के साथ छः सैन्धव लिपि के अक्षरों का अंकन है।[13] तक्षशिला से भी एक प्रस्तर की मुहर प्राप्त हुयी है, जिस पर खरोष्ठी लिपि के कतिपय अक्षर उत्कीर्ण है।[14] रोहतासगढ़ से प्राप्त सातवीं शताब्दी ईस्वी का प्रस्तर मुहर साँचा महत्वपूर्ण है,[15] जो सम्भवतः गौड़ नरेश शशांक का है।

प्रस्तर लेखों की प्राचीनता

भारत में प्रस्तर पर नियमित रूप से अभिलेख उत्कीर्ण कराने की शुरूआत यद्यपि मौर्य सम्राट अशोक ने की थी। उसने ही सर्वप्रथम सम्पूर्ण भारतवर्ष में धम्म के प्रचारार्थ व्यापक रूप से शिला, स्तम्भों, गुहा आदि के विविध आधारों लेख लिखवाये। हालांकि महास्थान[16], पिपरहवा[17], तथा बड़ली[18] नामक स्थानों कुछ ऐसे भी लेख मिले हैं, जिन्हें लिपि के आधार पर अशोक काल से पूर्व का बताया जाता है, ये लेख क्रमशः प्रस्तर निर्मित फलक, कलश व स्तम्भ जैसे उपादान पर उत्कीर्ण किये गये है। नवीन पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर प्रस्तर लेखों की प्राचीनता सैन्धव–सरस्वती सभ्यता तक मानी जा सकती हैं। वर्ष 1999 में गुजरात के धौलावीरा नामक पुरास्थल से एक प्रस्तरखण्ड की प्राप्ति हुई।[19] इस प्रस्तर खण्ड पर सैन्धव सरस्वती लिपि के चार बड़े–बड़े चिन्ह उत्कीर्ण किए गए हैं, जो 7 सेमी0 लम्बे व 10 से 16 सेमी0 चौड़े हैं। चौथे चिन्ह से इस अभिलेख के खण्डित होने के कारण आर. एन. विष्ट मानते हैं कि यह सम्भवतः किसी बड़े प्रस्तर अभिलेख का टुकड़ा होना चाहिए है, जिसके अन्य भाग अभी तक प्राप्त नही हो सके हैं।

प्रस्तर उपादान के गुण

अशोक ने अपने कई लेखों में आदेशों को प्रस्तर पर उत्कीर्ण कराने का कारण इस उपादान पर लेख का स्थायी होना ही बताया है– **'ध्रम–दिपि लिखित चिर–ठितिक होतू'**[20] (पंचम शिलालेख) **'धमं लिपि लिखापिता हेवं अनुपटिपजंतु चिलथितिका च होतु'**[21] (द्वितीय स्तम्भ लेख)। अशोक के पश्चात भी अन्य राजवंशों के शासकों ने प्रस्तर पर लेख उत्कीर्ण करवाने की इस परम्परा को अनवरत रूप से जारी रखा। इन लेखों का वर्ण्य विषय समयानुसार बदलता तो रहा, किन्तु प्रस्तर पर लेख उत्कीर्ण कराने का उद्देश्य वही रहा लेख का चिरस्थायित्व। चिरस्थायित्व की दृष्टि से अभिलेखों के लिए यद्यपि ताम्रपत्रों का भी प्रयोग किया गया तथापि प्रस्तर पर उत्कीर्ण लेखों का एक महत्वपूर्ण लाभ यह था कि वे चिरस्थायी होने के साथ–साथ स्थिर भी होते थे। जबकि, ताम्रपत्र छोटे तथा वहनीय होने के कारण अपने मूल स्थानों से बहुत दूर तक ले जाये जा सकते थे। ऐसी दशा में जब तक उनमें उल्लिखित स्थानों का तादात्म्य नहीं स्थापित हो जाए उन्हें किसी क्षेत्र विशेष से सम्बद्ध नही किया जा सकता।[22]

लेखन व उत्कीर्णन की तकनीकें–

प्राचीन भारत में अभिलेखों को प्रस्तर पर उत्कीर्ण करने व खुरचने की परम्परा समान रुप से लोकप्रिय थी। प्रारम्भिक लेखों में उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के पिपरहवा नामक स्थान से प्राप्त एक बलुआ पत्थर से निर्मित अस्थि मंजूषा पर एक लघु लेख प्राप्त हुआ है, जिसे खुरचकर लिखा गया है।[23] इस प्रकार की अभिलिखित प्रस्तर अस्थि मंजूषाएं पाकिस्तान के बाजौर (शिनकोट)[24], स्वात घाटी[25] व चरसद्दा (पेशावर)[26] से मिली हैं, जिन पर खुरच कर ही खरोष्ठी लिपि में लघु लेख लिखे गये हैं। प्रस्तर निर्मित किसी पात्र पर उत्कीर्णन कार्य आसान नही है, ऐसा करने से पात्र के टूटने का खतरा हो सकता है, अतः इन पर सम्भवतः नुकीले लौह शलाका से खुरच कर लेख लिखने की तकनीक अपनाई गयी है। पुर्वमध्यकालीन कवि राजशेखर[27] ने कवि की लेखन सामग्री में लौह कण्टक की भी गणना की है, जो सम्भवतः ऐसा ही उपकरण रहा होगा।

इसके अतिरिक्त प्रस्तर पर स्याही से भी चित्रित किये गये कई लेख भारत के अनेक भागों से प्राप्त हुये हैं। इन लेखों में भानुपुरा (मंदसौर, म0प्र0) के निकट दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व की ब्राह्मी लिपि में लाल रंग से लिखे गये पाँच लेख चिब्बरनाला गुहा से प्राप्त हुए हैं।[28] चित्रित लेखों में सबसे अधिक अभिलेख अजंता की गुहा संख्या 2, 9, 10, 16, 17 व 22 इन छः गुफाओं से मिले हैं।[29] एक अन्य प्रकार का लेख बान्धवगढ (मध्य प्रदेश) की गुफाओं में अंकित किया गया है। इस लेख को उत्कीर्ण करने के पश्चात अक्षरों को लाल

रंग से लेप दिया गया है।[30] ऐसा सम्भवतः गुहा की खुरदरी दीवारों पर उत्कीर्ण लेख को स्पष्ट पढ़ ना पाने के कारण ही किया गया था। ऐसे उदाहरण हमें दक्षिण भारतीय ताड़पत्रों के उत्कीर्णन प्रक्रिया में दिखलाई देते हैं, जहाँ ताड़पत्रों पर लेख उत्कीर्ण करने के पश्चात उसे काली स्याही से लेप दिया जाता था।

अभिलेखों से प्रत्यक्षतः यह पता नही चलता कि लेखों का उत्कीर्णन किस विधि से हुआ है, किन्तु अशोक के लेखों में लिपिकर, अथवा दिपिकर के अतिरिक्त लिखिते, लेखिते, निपिस्तं या निपेसितं जैसे शब्द बार–बार मिलते हैं। बूलर की समीक्षा के अनुसार ये सभी शब्द प्रस्तर–खण्डों पर आलेखन प्रक्रिया के संकेतक माने जा सकते हैं।[31] अहमद हसन दानी[32] ने 'लिपिकर' या 'दिपिकर' शब्दों व इनके साथ 'लिखिते' 'लेखिते' क्रिया जो लिख् धातु से बना है तथा प्राचीन साहित्यों में उत्कीर्णन के लिए पाये जाने वाले 'छिन्दति' शब्द जो 'छिद्' धातु से बना है, के आधार पर प्रस्तर उत्कीर्णन प्रक्रिया के दो चरण बताए हैं– प्रथम प्रस्तर पर लिपिकार द्वारा अभिलेखों का लेखन तथा दूसरा उत्कीर्णक द्वारा लिखे अक्षरों का उत्कीर्णन। दानी का मत प्रारम्भिक लेखों के लिए तो स्वीकार किया जा सकता हैं किन्तु आभिलेखिक विकास के परिणामस्वरुप पूर्व मध्यकालीन लेखों में लेखक तथा उत्कीर्णक के साथ–साथ रचनाकार का भी नाम मिलने लगता है।[33] अतः कहा जा सकता है कि अभिलेखों का लेखन तथा उत्कीर्णन एक निश्चित प्रक्रिया द्वारा होता जिसके के तीन चरण माने जा सकते हैं। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा[34] ने भी अभिलेख उत्कीर्णन प्रक्रिया के तीन चरण माने हैं। उनके अनुसार सर्वप्रथम जिस आशय का लेख लिखना होता, लेख की रचना प्रायः कोई कवि, विद्वान या उच्च शासनाधिकारी करता था, तत्पश्चात स्याही या खडिया से लेखक एक या दो–दो पंक्तियां उत्कीर्णन आधार पर लिख देता था। अन्त में उत्कीर्णक छेनी व हथौडी से अक्षरों को उत्कीर्ण कर देता था। इस प्रकार क्रमशः सारा पत्थर खोदा जाता। अशोक के काल के लेखों को जो सब के सब प्रस्तर पर लिखे गये हैं, खड़िया या कोयले या ऐसे ही किसी वस्तु की शलाकाकार लेखनी से लिखा गया है इस कारण इस प्रवधि को 'शलाका प्रविधि' कह सकते हैं।[35] लेखन कला में शलाका का प्रचलन ईसा पूर्व की प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक होता रहा है।

शिलाओं पर लिखने के लिए शिला का कोई ऐसा भाग चुना जाता जो जनता की निगाहों में अक्सर पड़ता हो।[36] इसी प्रकार स्तम्भों को भी ऐसे स्थानों पर स्थापित किया जाता था, जहाँ से जनसामान्य शासक द्वारा जारी आदेश, लेख आदि को पढ़ सके। उत्कीर्णन से पूर्व शिला या प्रस्तर आदि की सतह को छेनी की सहायता से समतल कर लिया जाता था, तत्पश्चात उसको घुण्टा, शंख आदि से घिसकर चिकना तथा चमकीला बना लिया जाता था उसके बाद उस पर लेख लिखा जाता था। कभी–कभी खुरदुरे प्रस्तर पर भी लेख उत्कीर्ण मिलते हैं। अशोक के शिलालेख खुरदुरे आधार पर, जबकि उसके स्तम्भ लेख चमकाकर चिकने किए आधार पर सुन्दर अक्षरों में उत्कीर्ण किए गये।[37]

लेख लिखने से पूर्व प्रस्तर पर पंक्तियां सीधी लाने के लिए सूत की पतली डोरी को गेरु में भिगो कर उससे पंक्तियों के निशान बनाते या लकड़ी की पट्टी रख कर उसके सहारे छेनी आदि से लकीर का निशान बना लेते।[38] कभी–कभी उत्कीर्ण किए जाने वाले स्थान के चारों ओर भी रेखायें मिलती हैं, जिनका उद्देश्य मात्र लेखों को अगल करने के लिए किया जाता था। अशोक के गिरनार शिलालेख में 14 लेखों को दो भागों बाँटकर उन्हें अलग–अलग करने के लिए उनके चारों ओंर रेखायें बना दी गयी हैं।[39] प्रस्तर की पट्टिकाओं पर प्रायः चिकना कर लेख उत्कीर्ण किया जाता था व उसके दोनों ओर तथा ऊपर नीचे उचित हाशिया छोडा जाता था। कभी–कभी इनके किनारे उभरे होते थे।[40]

डी0सी0 सरकार[41] के अनुसार प्रस्तर पर निजी लेखों के पाठ प्रायः पेशेवर लेखक द्वारा तैयार किए गये और इसकी एक नकल खुदाई करने वाले को दी जाती थी, जो प्रायः संगतराश या राजगीर होते थे। ये राजमिस्त्री सबसे पहले पत्थर को छाँटते या सवाँरते थे, और फिर इस पर स्याही से अक्षरों को खींच लेते थे। यह कार्य लेखक के निरीक्षण और मार्गदर्शन में होता था। इसके बाद वे अक्षरों कों उत्कीर्ण कर देते थे। कभी–कभी पेशेवर लेखक स्वयं ही प्रलेख के पाठ की नकल पत्थर पर कर देते थे। जबकि राजकीय लेखों के लिखने का काम राजसभा का एक विद्वान व्यक्ति करता था। वह पाठ की स्वच्छ नकल भूर्जपत्र आदि पर

तैयार करता था अथवा उसे प्रस्तर पट्ट पर स्याही या नोकदार उपकरण से लिख देता था। प्रलेख की नकल उस पत्थर के परिमाण के ही पन्ने पर की जाती थी जिस पर उसे उत्कीर्ण करना होता था।

उत्कीर्णन के दौरान हुयी अशुद्धियों को शुद्ध करने के लिए अनेक विधियों का सहारा लिया जाता था। लेखक की असावधानी से छूट गए अक्षर को प्रायः छूट के स्थान के पास पंक्ति के ऊपर या नीचे निर्देश या निर्देश के बिना लिख दिया जाता था।[42] कभी–कभी छूट के स्थान को गुणा–चिन्ह अथवा काकपद (∧) द्वारा संकेतिक कर दिया जाता था और छूटे अक्षर या अक्षरों को हाशिए पर उत्कीर्ण कर दिया जाता था।[43] भूल से अधिक लिखा अक्षर, शब्द, मात्रा व अनुस्वार आदि या तो छेनी से उडा दिया जाता था, या उस पर छोटी–छोटी खडी या तिरछी लकीरें बना कर उसे काट दिया जाता था।[44] इसके अतिरिक्त अशुद्ध शब्दों या अंशों को खुरच देना, अशुद्ध पंक्ति के उपर और नीचे छोटी रेखाएं खीच देना, छूटे हुए शब्दों एवं पंक्तियों को सम्बंधित स्थान का निर्देश करने वाले किसी चिन्ह के बिना पंक्ति के ऊपर या नीचे जोड़ देना आदि अन्य विधियाँ भी प्रस्तर लेखों में मिलती है।[45] लेखों में कभी पत्थर की चटक उड़ गयी तो उसमें पत्थर के रंग की मिश्र धातु भर कर उस स्थान को समान बनाते और यदि अक्षर का कोई अंश चटक के साथ उड़ जाता तो उसको धातु पर उत्कीर्ण कर लेते थे।[46] राजपुताना संग्रहालय में सुरक्षित चाहमान शासक विग्रहराज द्वारा रचित हरकेलिनाटक तथा सोमेश्वर पंडित द्वारा रचित ललितविग्रहराजनाटक दो–दो शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं, इन चारों शिलाओं में कई जगह धातु भरी हुयी है तथा कहीं उस पर अक्षर का अंश भी उत्कीर्ण किया गया है।[47]

अधिकांश अभिलेखों के अन्तिम अंशों से ज्ञात होता है कि प्रस्तर पर उत्कीर्ण की जाने वाले लेखों का प्रारुप पेशेवर लेखकों द्वारा तैयार किया जाता था। इनके विषय में प्राचीन भारतीय साहित्य तथा अभिलेखों में प्रचुर प्रमाण मिलते हैं। लेखकों को कालान्तर में लिपिकर, दिविर, कायस्थ, करण, कर्णिक, शासनिन् तथा धर्मलेखिन आदि नामों से भी जाना गया।[48] इसी प्रकार उत्कीर्णक भी इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे, जो सम्भवतः अर्द्धशिक्षित होते थे। प्रारुप अनुसार लेख को प्रस्तर पर उत्कीर्ण कर देना ही इनका कार्य था। ये भी कालान्तर में अनेक नामों से जाने गये, जैसे– शिल्पी, रूपकार, सूत्रधार, शिलाकुट आदि।[49]

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में अपने स्थायित्व गुण तथा सर्वत्र उपलब्ध होने के कारण प्रस्तर एक महत्वपूर्ण लेखन व उत्कीर्णन का आधार था, जिसके विविध रुपों का प्रयोग किया गया। लेखन हेतु प्रस्तर के प्रयोग की प्राचीनता अब सैन्धव–सरस्वती सभ्यता तक रेखांकित की जा सकती है। इस आधार पर लेखन व उत्कीर्णन की कई तकनीकें प्रचलन में थीं, किन्तु लेखन आधार, देश–काल विभेद के कारण लेखन तथा उत्कीर्णन प्रक्रिया में कतिपय नये प्रयोग तथा परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं। समाज में लेखक तथा उत्कीर्णक वर्ग का उदय भी शासकों द्वारा अभिलेख लिखवाने की परम्परा का परिणाम था।

मौर्य काल से लोकप्रिय प्रस्तर लेखों की यह परम्परा बाद के कालों में भी दिखलाई पड़ती है, किन्तु, गुप्तकाल से भूमिदान का व्यापक प्रचलन होने से जहाँ ताम्रपत्रों का प्रचलन अधिक हो गया, वहीं प्रस्तर का प्रयोग धीरे–धीरे कम होने लगा। इसके साथ ही प्रस्तर लेखों के अभाव का एक प्रमुख कारण पूर्व मध्यकाल में विकेन्द्रीकरण का प्रभाव भी था। मुसलमानों के भारत में आगमन से कागज पर लेखन प्रथा की सर्वप्रियता में वृद्धि हुई और इसके कारण धीरे–धीरे प्रस्तर पर अभिलेख उत्कीर्णन की परम्परा का ह्रास हो गया।

सन्दर्भ सूची :

1. सत्येन्द्र (2013), पाण्डुलिपि विज्ञान, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 155।
2. डिस्कलकर, डी0 बी0 (1979), मैटेरियल युज्ड फॉर इण्डियन एपिग्राफिकल रिकॉर्डस्, भण्डारकर ओरिएण्टल रिर्सच इस्टिट्युट, पूना, पृ0 3।
3. पाण्डेय, राजबली (2004), भारतीय पुरालिपि, पृ. 69–70।
4. सरकार, डी. सी. (1965), सेलेक्ट इंस्क्रिप्सन, खण्ड–1, कलकत्ता विश्वविद्यालय, पृ., 121, पं0 3।
5. हुल्श, ई. (1881), कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, जिल्द–1, पृ. 13, पं0 32।
6. उपरोक्त।
7. उपरोक्त, पृ. 165, पंक्ति 5।
8. उपरोक्त।
9. सरकार, डी. सी., पूर्वोक्त, पृ. 523, पंक्ति 13।
10. उपरोक्त, पृ. 524, पंक्ति 7–8
11. हुल्श, ई., पूर्वोक्त, पृ. 182, पंक्ति 3।
12. पाण्डेय, राजबली, पूर्वोक्त, पृ. 68–69।
13. कनिंघम (1875), अर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिर्पोट्स फॉर द इयर 1872–73, पृ. 108 तथा फलक 33।
14. कोनो, स्टेन (1929), खरोष्ठी इन्सक्रिप्शन्स विद् दि एक्सेप्शन्स ऑव दोज ऑव अशोक, कार्पस इन्सक्रिप्शनम इण्डिकेरम्, जिल्द–2, कलकत्ता, पृ. 102।
15. फ्लीट, जे. एफ. (1888), इन्सक्रिप्शन्स ऑफ द अर्ली गुप्त किंग्स, कॉर्पस इन्सक्रिप्शनम इण्डिकेरम्, जिल्द–3, भारत सरकार प्रेस, कलकत्ता, पृ. 283।
16. भण्डारकर, डी. आर. (1931), मौर्यन ब्राह्मी इन्सक्रिप्शन ऑव महास्थान, इपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द–21, पृ. 83–84।
17. गोयल, श्रीराम, गोयल, श्रीराम (1972), प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग–1, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ.149।
18. गोयल श्रीराम (2002), ब्राह्मी स्क्रिप्ट ऐन इन्वेंशन ऑफ दि अर्ली मौर्यन पीरियड, पृ. 105।
19. विष्ट, आर. एस.(2015), एक्सक्वेशन्स ऐट धौलावीरा 1989–90 टु 2004–05, पृ. 230।
20. सरकार, डी. सी., पूर्वोक्त, पृ., 23, पंक्ति 8।
21. उपरोक्त, पृ. 55 पंक्ति 6–7।
22. फ्लीट, जे. एफ., पूर्वोक्त, अभिलेख सं. 24, पृ. 111।
23. पेप, डब्ल्यू. सी. (1898), द पिपरहवा स्तूप, कॉन्टेनिंग रेलिक्स ऑफ बुद्धा, द जर्नल ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड, जुलाई, पृ. 576–577।
24. गोयल, श्रीराम (1972), पूर्वोक्त, पृ. 185।
25. उपरोक्त, पृ. 191।
26. मजुमदार, एन. जी (1942)., इन्सक्रिप्शन्स ऑन टु कास्केट्स फ्रॉम चरसद्दा, इपिग्राफिया इण्डिका भाग–24, पृ. 8।
27. दलाल सी0डी0 (सम्पा0) (1938) :राजशेखर कृत काव्यमीमांसा, ओरिएंटल इन्स्टिट्युट, बडौदा, पृ. 50।
28. पुरोहित, बी. एल. (2007), भारतीय अभिलेख और इतिहास, शिवालिक प्रकाशन दिल्ली, पृ. 32–36।
29. बर्गेस, जे. (1881), इन्सक्रिप्सन फ्रॉम द केव–टेम्पल्स ऑव वेस्टर्न इण्डिया, द गवमेंन्ट सेन्ट्रल प्रेस, बाम्बे, पृ. 80।
30. चक्रवर्ती, एन0 पी0 (1955), ब्राह्मी इंस्क्रिप्शन्स फ्रॉम बान्धवगढ़, एपिग्राफिया इण्डिका, भाग.31, पृ0 168।
31. राय, एस0 एन. (2004) भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ. 95।

32. दानी, अहमद हसन (1963), इण्डियन पैलियोग्राफी, क्लेरेंडन प्रेस, आक्सफोर्ड, पृ. 32–33।
33. जैन, बालचन्द्र (1961), उत्कीर्ण लेख, महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय रायपुर, पृ. 99, 112, 119, 134।
34. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द (1973), प्राचीन भारतीय लिपिमाला, मुंशीराम मनोहरलाल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 148।
35. नारायण, ए.के. एवं टी.पी. वर्मा (1871), प्राचीन भारतीय लिपिशास्त्र और अभिलेखिकी, सिद्धार्थ प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 32।
36. उपरोक्त, पृ. 64।
37. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, पूर्वोद्धृत, पृ. 148।
38. उपरोक्त, पृ. 148।
39. हुल्श, पूर्वोक्त, पृ0 9 व देखें पृ0 सं0 4, 10, 14 व 22 का प्लेट।
40. नारायण, ए.के. एवं टी.पी. वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृ. 82।
41. सरकार, डी. सी. (1965), इण्डियन इपिग्राफी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 70।
42. उपरोक्त, पृ. 93।
43. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, पूर्वोद्धृत, पृ. 150।
44. उपरोक्त, पृ. 150।
45. पाण्डेय, राजबली, पूर्वोद्धृत, पृ. 95।
46. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, पूर्वोद्धृत, पृ. 148।
47. उपरोक्त, पृ. 148, टिप्पणी–7।
48. चौधरी, रायकृष्ण (2013), प्राचीन भारतीय अभिलेख, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 19।
49. पाण्डेय, राजबली, पूर्वोद्धृत, पृ. 86।